भारतीय संस्कृति पर आधारित जीवन शैली और स्वस्थ एवं सुखी जीवन पर इस का प्रभाव

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार

मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार हेतु शैक्षणिक परियोजना

कार्य की प्रस्तुति

2003–04

M Kumar

डा. राकेश गिरि
प्रवक्ता

महेन्द्र कुमार
एम.ए.–II–योग

भारतीय संस्कृति पर आधारित जीवन शैली और स्वस्थ एवं सुखी जीवन पर इस का प्रभाव

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार

मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार हेतु शैक्षणिक परियोजना

कार्य की प्रस्तुति

2003–04

डा. राकेश गिरि
प्रवक्ता

महेन्द कुमार
एम.ए.– II–योग

R

Th99M

महे- ९न

पुरोवाक्

भारतीय संस्कृति ही मानव जीवन का आधार है । भारतीय संस्कृति वैदिक संस्कृति पर अधारित है । यह ऋषियों मुनियों के द्वारा मार्गदृशित है । भारतीय संस्कृति पर विभिन्न ग्रन्थों में इस का वरणन है । योग का विद्यार्थी होने के कारण वैदिक संस्कृति एवं आधुनिकता की जानकारी तथा संकलन हेतु मेरी अति तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुई । इसी जिज्ञासा के साथ मैं **डा. राकेश गिरि, प्रवक्ता, मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग** के पास परियोजना–कार्य हेतु विचार–विमर्श के लिये गया । गहन चिन्तन के बाद इस विषय के शीर्षक '' **भारतीय संस्कृति पर अधारित जीवन शैली और स्वस्थ एवं सुखी जीवन पर इस का प्रभाव** '' को अंतिम रुप दिया गया ।

इस कार्य को निर्विध्न सम्पन्न करने के लिए **विभागाध्यक्ष प्रो. डा. ईश्वर भारद्वाज जी** का पुत्रवत् स्नेह मुझे सदैव प्राप्त हुआ है । अतः इन के परामर्श हेतु कृतज्ञता ज्ञापन के लिये मेरे पास शब्द नहीं है । इस शैक्षणिक परियोजना कार्य को पूर्ण करने में अपने **मार्ग– दर्शक डा. राकेश गिरि जी** का अत्यन्त आभारी हूं । उन्होनें अपना अमुल्य समय मुझे दिया । पुस्तकालय के कर्मचारी **श्री शत्रुध्न झा जी** ने भी बहुत सहयोग दिया है । अतः उनका ह्रदय से आभार प्रकट करता हूं ।

सावधानी रखते हुए भी त्रुटियां रह जाना स्वाभाविक है । उनके लिए स्वयं को दोषी मानते हुए क्षमा याचना करता हूं ।

महेन्द्र कुमार

एम.ए.– ।।–योग

M Kumar

विषय विवरण

भारतीय संस्कृति पर आधारित जीवन शैली और स्वस्थ एवं सुखी जीवन पर इस का प्रभाव

परिचय -भारतीय संस्कृति :-

भारतीय संस्कृति, आर्य संस्कृति, सनातन संस्कृति एक दूसरे के प्रायवाची शब्द हैं। जिस प्रकार किसी राष्ट्र को चलाने के लिए एक ऐसे संविधान की आवश्यक्ता पड़ती है जो राष्ट्र को प्रगती पथ पर चला सके । उसी प्रकार मानव जाति के उत्थान के लिए भी एक ऐसी संस्कृति की आवश्यक्ता है जिस पर चल कर मानव जाति का उत्थान किया जा सकता है । ऐसी संस्कृति पूरे विश्व मे केवल भरतीय संस्कृति ही है । भारतीय संस्कृति से हटकर हम मानव उत्थान की बात नहीं कर सकते । हमारी संस्कृति में ऐसी कोई बुराई अथवा भद्दापन नहीं जिस पर कोई उंगली उठा सके । हमारी संस्कृति की जो मान्यताऐं हैं उन की काट दूसरी संस्कृति के मानने वालों के पास नहीं हैं ।

जिस देश में '' वसुदेव क्कुटम्बकम्'' जैसे सिद्धान्त/भावना का विकास हुआ हो । वहां हिंसा, झुठ, लूट-मार, आंतकवाद, लडाई झगडे, गरीबी आदि बातें महत्वहीन हो जाती है । जिस संस्कृति ने पुरुषोत्म् भगवान राम जैसे , श्रवण कुमार जैसे बेटे दिये हों । सत्य पर अटल रहने वाले महाराजा सत्यवादी हरीश चन्द्र जैसे राजा दिये हों । कर्ण, अर्जुन, भीम, अभिमन्यु जैसे योद्धा तथा भीष्म जैसे ब्रह्मचारी दिए हों । प्रलाद, अहिल्या, कबीर, मीरा बाई जैसे ईश्वर भक्त पैदा किये हों । बालमिकी, वेद व्यास जैसे विद्वान साहित्यकार विदुर, चाणक्य, शुक्र,भृतृहरि जैसे नीतिवान जिस संस्कृति नें दिये हों, जिस संस्कृति ने ज्योतिष, अंक विज्ञान, रमण विद्या आदि का विकास हुआ हो । हवन, पूजापाठ, मन्त्र विद्या आदि का विकास हुआ हो । निरोग रहने और मोक्ष का अधिकारी होने के लिये योग, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा जैसी पद्धतियों का विकास हुआ हो । भारतीय संस्कृति वह संस्कृति है जिस में वर्णन आता है कि भगवान राम के काल में किसी पिता के होते हुए पुत्र को मौत नहीं आ सकती थी । सत्यवान सावित्री की कथा भी भारतीय संस्कृति में अपना प्रभाव रखती है जिस में वो कैसे अपने पति के प्राणों की रक्षा करती है ।. महाराणा प्रताप, शिवाजी, लक्ष्मी बाई, तांतिया टोपे, मंगल पांडे, महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस, राजगुरु, सुखदेव, भक्त सिंह, श्री

श्रद्धानन्द जी जैसे अमर शहीदों को इस संस्कृति ने ही अपने गर्भ में पाला था। स्वामी दया नन्द जी, विवेका नन्द जी जैसे मार्ग दर्शक भी इसी संस्कृति की देन है । अर्थात इस संस्कृति ने हर क्षेत्र में अपना योगदान दिया है ।

योग :-

योग भारतीय संस्कृति की ही देन है । योग भारत देश में ही ऋषियों–मुनियों के द्वारा मोक्ष प्राप्ति के लिए खोजा गया था । यह एक ऐसी पद्धति है जो कि हमारे ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व खोज ली थी । योग आत्मा और प्रमात्मा को मिलाने की अनुभूति को कहा गया है । जब कि योग को अलग अलग ग्रंथों में अलग अलग प्रकार से परिभाषित किया गया है । जैसे कि गीता में '' योगः कर्मसु कोशलम'' कह कर परिभाषित किया गया है । हठयोग में सूर्य और चन्द्र नाड़ि के मिलन को योग कहा गया है । योग की कई ओर शखयें है जैसे कि कर्म योग, ज्ञान योग, भक्ति योग, सहज योग, राजयोग, हठयोग, समत्व योग आदि । जो व्यक्ति ज्यादा भावुक प्रधान वृति के होते हैं वो भक्तियोग में अग्रसर होते हैं । जो साधक पढने लिखने में चातुर होतें हैं वे ज्ञान योग में आगे बढतें हैं । इसी प्रकार जो साधक शारीरिक तौर पर सुदृड़ होते हैं वे कर्मयोग का मार्ग पकड़ते हैं । जो व्यक्ति के संस्कार मलीनता से दूर हो जाते हैं वे सहजयोग और स्वर विज्ञान में जिन की रुचि हो वे हठयोग को अपना लेते हैं । इस प्रकार सभी प्रकार के साधक अपनी रुचि के अनुरुप ही योग मार्ग में लगते हैं।

अजकल जो योग प्रंचलित है उस को पातञ्जलि का योग माना गया है । इस के अविष्कार कर्ता श्री पातञ्जली मुनि ही है । उन्होंने योग को आठ भागों में विभाजित कर के व्याख्या की है जिसमें यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि बताये गये हैं । अगर हम इन अगों का पालन करते हुए अपना जीवन वतीत करें तो जहां पर खुद को लाभ सुख व स्वास्थ्य मिलेगा वहां पर दूसरों को भी लाभ होगा । यम में जिस प्रकार सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का वर्णन किया गया है , इस से स्पष्ट हो जाता है कि सत्य बोलने से किसी का भी बूरा नहीं होगा तथा सभी को लाभ ही होगा । इसी प्रकार हिंसा न करने से भी आजकल की उग्रवाद की घटनाओं पर काबू पाया जा सकेगा । चोरी न करने से भी लोगों में आपसी प्यार, भाईचारा बढेगा और जीवन सुखी होगा । ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही बलात्कार जैसी घटनाओं पर काबू पाने में

सहायता मिलेगी । आवश्यक्ता से अधिक अगर संग्रह न किया जाये तो जरुरत मन्दों को वस्तुए उचित दामों पर उपल्बद हो जायेगी और सब को वस्तुओं का भोग उपलब्द होगा जिस से जीवन सुखी एवं निरोग रहेगा ।

अष्टांग योग में नियम को दूसरा महत्वपूर्ण स्थान मिला है । नियम में शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान की व्याख्या है । यहां पर शौच का सम्बन्ध आन्त्रिक और बाहरी दोनों तरह से है । व्यक्ति को अपनी सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिये । अगर इस का पालन निष्ठा से करता है तो वह विरोगी और सुखी रहेगा ही। सन्तोष का महत्व इस लिये बढ जाता है क्योंकि सभी रोगों का मूल कारन मानसिक होता है और सन्तोष रखने से मन शांत रहता है तथा रोगों से परे रहता है । तप व्यक्ति को महान बनाते हैं, तप से व्यक्ति में दृड़ता आती है। वह किसी भी कार्य को कर सकने में सक्ष्म हो जाता है तथा मुश्किल आने पर घबराता नहीं । स्वाध्याय को भी मनुष्य की जिन्दगी में एक अहम स्थान है । जिस व्यक्ति ने शास्त्रों का अध्ययन किया है उसे कर्म और अकर्म तथा धर्म आदि का ज्ञान हो जाता है । वह उसी प्रकार से व्यवहार करता है । ईश्वर परिधान का अर्थ यहां पर उस परम पिता प्रमात्मा से है, जिस के कारन ही सकल जगत चलायेमान है । अभी–अभी अमेरिका के विज्ञानिकों ने शौध किया है कि किसी भी रुप में ईश्वर को मानने वालों का मानसिक स्तर मजबूत होता है ।

पातञ्जलि के अष्टांग योग में जहा आसनों को तीसरा स्थान मिला है वहीं पर हठयोग में आसनों के प्रथम स्थान दिया गया है । आसनों का योग के क्षेत्र में इतना ज्यादा महत्व है जितना किसी और अंग का नहीं है । जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज कल लोगों द्वारा आसनों को अपना कर सिद्ध कर दिया है । आसनों को योग का प्राय माना जाने लगा है । योग में जहां आसनों का महत्व है वहीं पर इसका प्रयोग आजकल कई प्रकार की बिमारियों को दूर करने के लिए भी किया जाने लगा है । योग चिकित्सा में भी सब से ज्यादा जोर आसनों पर ही दिया जाता है । आसनों की गिनती में तो चौरासी लाख बताये गये हैं लेकिन आसनों को पंतजलि ने (स्थिर सुखम् आसनम्) कह कर परिभाषित किया है । विभिन्न प्रकार के आसनों के करने से विभिन्न प्रकार के रोग दूर होतें हैं । प्राणयाम का भी योग में अपना स्थान है । प्राण के चलने से मन चचंल होता है और प्राण न चलने पर मन स्थिर हो जाता है । इस प्रकार प्राणायाम के करने से मन में स्थिरता आती है । प्राणायाम

करने से शरीर व्याधियों से मुक्त हो जाता है, एक प्रकार का तेज आ जाता है । जिस से मन प्रसन्न और शरीर विरोग रहता है । इसी प्रकार प्रव्याहार का पालन बताया गया है कि जिस प्रकार कछुआ अपने अंगो को अपने भीतर इक्कठे कर लेता है उसी प्रकार मनुष्य को चाहिये कि वह अपने कर्म इन्द्रियों और ज्ञान इन्द्रियों को विषयों से हटा कर अन्त्रमुखी कर ले । क्योंकि ''अति सर्वत्र वर्जते'' जब इन्द्रिया अपने विषयों में रत रहती है तो शरीर को कई प्रकार की पीडाओं से गुजरना पड़ता है । अगर प्रत्याहार का पालन ठीक प्रकार से किया जाये तो मनुष्य अपनी जिन्दगी सुखी एवं स्वस्य बिता सकता है । इसी प्रकार योग के अन्य अंग ध्यान, धारणा और समाधि जो कि अष्टांग योग में अति महत्वपूर्ण है । इन तीनो को एक साथ हम सयंम कहते हैं । जिस का योग के मोक्ष मार्ग में तो लाभ है ही, साथ साथ इस का अधिक लाभ मानसिक रोगों को दूर करने और मानसिक शांति प्राप्त करने के लिए किया जा सकता हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि योग मार्ग जहां मोक्ष प्रदान करने वाला है वहीं पर रोग निवारक भी है तथा सुखी जीवन देता है । अगर सब लोग योग के मार्ग पर चले तो निसंकोच भारत जहाँ समस्याओं से घिरा हुआ नजर आ रहा है वह पुन आर्थिक, समाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में आगे निकल कर विश्व को एक नया रास्ता देगा । योग भारत की ही देन है । आज भारत के लोग योग को इतना महत्व चाहे नहीं दे रहे हैं लेकिन पाश्चात्य देश जो भौतिक सुख को ही अन्तिम सुख समझते हैं उन्होंने भी योग के माध्यम से अध्यात्मिक और शारीरिक लाभ लेना आरम्भ कर दिया है । आज अन्य देशों में योग का प्रचार प्रसार बढ रहा है और लोग योग को अपना कर अपना जीवन संवार रहें हैं । योग मार्ग तो एक सादा जीवन, उच्च विचार के सिद्धान्त पर जीवन जीने की कला थी लेकिन लोगों ने अपने जीवन जीने के तौर तरीके बदल लिये हैं इस लिये योग एक औपचार करने का साधन दिखने लग गया है । इसी लिये आज कल योग–चिकित्सा, योग–उपचार केन्द्र आस्तित्व में आने लगे हैं । योग ''उपचार से प्रहेज अच्छा है'' के सिद्धान्त पर बिलकुल खरा उतरता है क्योंकि योग करने से रोगों का क्षय होता ही है साथ में योग करते रहने से रोगों को नजदीक आने से भी रोका जा सकता है। इस लिए योग अपना कर हम सुखी और स्वस्थ जीवन जी सकते हैं । योग जोकि भारतीय संस्कृति का एक अंग है इसके अनुरुप हमें अपना जीवन यापन करना चाहिये ।

आयुर्वेद :-

आयुर्वेद का प्रमुख उददेश्य है – स्वस्थ के स्वास्थ्य का परीक्षण करना, आतुर के विकार का प्रशमन करना। मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये स्वरथवृत का पालन आवश्यक है । स्वस्थवृत के पालन के अभाव में भिन्न–भिन्न प्रकार के रोगों का सामना करना पड़ता है । स्वस्थ पुरुष के लक्षणों की व्याख्या उपस्थित करने से पूर्व पुरुष की आयुर्वेदीय अवधारणा का उल्लेख आवश्यक है । चरक के अनुसार पुरुष शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा का संयोग है । अर्थात जीवित पुरुष के चार पक्ष है। ''जिस पुरुष के दोष, धातु, मल तथा अग्नि व्यपार सम हो अर्थात सामान्य हो अर्थात विकार रहित हो तथा जिस की इन्द्रियां, मन और आत्मा प्रसन्न हो वही स्वस्थ है ।'' आधुनिक समय में विश्व स्वास्य संगठन ने अनेकों बार सुधार के बाद जाकर अब स्वस्थ्य को पूर्णरुप से परिभाषित कर पाया है । जोकि सुश्रुत द्वारा हजारों वर्ष पहले ही परिभाषित कर दिया था । चिकित्सा की दृष्टि से आयुर्वेद पद्यति का भारतीय संस्कृति के साथ गहरा सम्बन्ध है । आयुर्वेद पद्यति में चरक तथा सुश्रुत का काफी योगदान है । आयुर्वेद का मूल मंत्र है कि सभी जड़ी बूटियां औषधियां है जिस प्रकार सभी शब्दों को मंत्र माना गया है । किसी भी प्रकार के रोग को ठीक करने के लिये आयुर्वेद सक्ष्म है तथा यह पद्यति ही सब से प्राचीन पद्यति है । इस पधति में सब प्रकार के रोगों को ठीक करने के लिए प्राकृति से ही जड़ी–बूंटियों को माध्यम बना कर छुटकारा दिलाया जाता है । आयुर्वेद पद्यति एक ऐसी पद्यति है जिस का किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं है जैसा कि ऐलोपेथिक पधति में होता है । इस पद्यति में रोग को जानने के बाद उस के निदान के लिए औषधियों के साथ साथ पंच कर्मो का भी विधान है जैसा कि योग चिकित्सा में षटकर्मो का विधान है । इन पंच कर्मो के द्वारा शरीर की शुद्धि की जाती है ।

आयुर्वेद का मुख्य आधार वात,पित और कफ हैं । जब यह तीनों मल सम अवस्था में सद कार्य में लगे होते हैं तो इन से शरीर की वृद्धि होती है लेकिन इन का विसम होना रोग उत्पति का कारन बनता है । आयुर्वेद के अनुसार कफ से बीस प्रकार के रोग उत्पन होते हैं तथा पित से चालीस प्रकार के और वात से अस्सी प्रकार के रोगों की उत्पति होती है ।

दिन चर्या एवं ऋतु चर्या :-

स्वस्थ पुरुष को भारतीय संस्कृति के अनुसार पूर्व रात्रि को किये गये आहार के जीर्णाजीर्ण का विचार करते हुए ब्रह्म मुहूर्त में उठना चाहिये । उठने पर सर्व प्रथम दर्पण में स्वमुख का दर्शन करके वेग आने पर मल त्याग करना चाहिये । मल त्याग सम्बन्धी स्वस्थ वृत में निर्देश दिया गया है । दिन में उतराभिमुख और रात्रि को दक्षिणाभिमुख हो कर मल अंगो को संकुचित करके मल मूत्र का त्याग करना चाहिये । बिना वेग के अनावश्यक मल द्वारा मल मूत्रोंत्सर्ग नहीं करना चाहिये । अमेध्य स्थान, मार्ग, मिटी या राख के ढेर, गोस्थान, गोमय, ग्राम या नगर के निकट, अग्नि, रमणीक स्थान, चैत्य वृक्ष के नीचे, स्त्री, पुज्य पुरुष, गो, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल के सामने तथा पृथ्वी को बिना आवृत किये मल का त्याग नहीं करना चाहिये । तदुपरान्त शौच तथा आचमन के बाद दन्तधावन करना चाहिये । आठ उंगल लम्बी तथा कनिष्ठिका उगली जितनी मोटाई वाली हरी लकड़ी से दन्तधावन करना चाहिये । यह कार्य दिन में दो बार अर्थात सुबह तथा शाम करना चाहिये । सुश्रुत ने कई प्रकार के चूर्ण का भी उल्लेख किया है । इससे मुख की गन्दगी, कलेद तथा कफ निकल जाता है । इस प्रकार मुख की निर्मलता अन में रुचि तथा मन में प्रसन्ता आती है । उपरोक्त समग्री न मिलने पर मुख में 12 बार जल गण्डूष धारण करके मुख शौधन क्रिया की जा सकती है । तदुपरांत मुख तथा नेत्र प्रक्षालन करना चाहिये । कुछ परिस्थितियों मे कोष्ण जल से मुख तथा नेत्र पक्षालन करना चाहिये । राजमार्तण्ड के अनुसार दिन में तीन बार ऐसा करने से नेत्र स्वस्थ रहते हैं । नास्यकर्म अर्थत नाक में तेल लगाना स्वास्थवृत का एक अंग है । यह शरीर को अरोग्य तथा दृढता प्रदान करता है । एसा करने से नेत्र, कर्ण, नासिका के रोग उत्पन नहीं होते । इस से बाल जल्दी नहीं गिरते ।

व्ययाम :-

शरीर की जो चेष्टा शरीर को स्थैर्य तथा बल प्रदान करे उसे व्ययाम कहते हैं । उचित मात्रा में व्ययाम नित्य करना चाहिये । शरीर में श्रम उत्पन करने वाले कार्य को व्ययाम कहते हैं । सुश्रुत ने मनुष्य को अपने कुल बल के आधे बल के बराबर व्ययाम करने का उपदेश किया है । मनुष्य हाफने लगे, बगलों में पसीना आने लगे ललाटपट पर पसीना आने लगे तो आधा बल समझना चाहिये । व्ययाम से शरीर में हल्कापन, कर्म सामर्थ्य दोषक्षय हेते हैं । शैर करना भी (चड़ क्रमण) भी व्ययाम के अन्त्रगत आता है ।

अभ्यंग :-

नित्य विधिपूर्वक तैलाम्यंग भी महत्वपूर्ण है । यह दिन चर्य का एक अंग ही है । वाग्भटट ने तैलाभ्यंग को जराहर, श्रमहर, वायु विकार नाशक, आयु पुष्टिकार निद्राजनन कहा है । सिर कान और पैरों को विशेष रुप से अभ्यंग करने को कहा गया है । स्पर्श ज्ञान के लिये ही तैलाम्यंग बहुत हितकर है । यह त्वचा के लिये विशेष लाभकारी है । चर्म रोगों का नाश करने वाला है । प्रतिदिन तैलाभ्यंग करने वाले पुरुष के शरीर में अभिघातादि से कोई विशेष विकार नहीं होता और 'बलकर्म' करने पर भी बहुत विकार की संभावना नहीं होती । नित्य अभ्यंग करने वाला पुरुष कोमल स्पर्श तथा परिपुष्ट अंगो से युक्त, बलवान तथा प्रिय आकृति वाला हो जाता है । उसके शरीर पर जरावस्था के लक्षण अल्पमात्रा में ही प्रकट होते हैं । प्रतिदिन शिर में तैलमर्दन करने वाले पुरुष को शिरः शूल, खालित्य, पालित्य केशपतन नहीं होता तथा शिर के कपालों में बल की विशेष अभिवृद्धि होती है । केश कृष्णवर्ण, दृढमूल वाले तथा विशेषरुप से बढ़ते हैं । इन्द्रियां प्रसन्न हो जाती है, त्वचा कोमल तथा निर्मल हो जाती है और सुखपूर्वक नींद आती है । शिरोअभ्यंग के साथ-साथ केश्या कंघी का प्रयोग करना चाहिए । यह केश प्रसाधनी तथा केशों के धूलि, जन्तु तथा मल का नाश करती है । प्रतिदिन कर्णतर्पण अर्थात् कर्माभ्यंग करने से वातज कर्ण रोग तथा मन्यास्तम्भ हनुस्तम्भ प्रभृति रोग नहीं होते । साथ उच्चश्रृति (ऊंचे सुनना) तथा बांधिर्य नहीं होता । अतः नित्य कर्णाभ्यंग करना चाहिए ।

शरीर परिमार्जन :-

शरीर परिमार्जन, उद्वर्तन, उत्सादन, उद्घर्षण तथा फेनक तथा अन्य शरीर परिमार्जनात्मक विधियों को नियमित प्रयोग स्वास्थ्य के लिए हितकर है । सुश्रुत संहिता चिकित्सा स्थान के अनागतबाधा प्रतिषेधनीय में इन शरीर परिर्माजनात्मक कर्मो की उपयोगिता तथा उनके गुणों का विस्तृत उल्लेख है । तदनुसार (अ) 'उद्वर्तन' या उबटनकर्म वातनाशक, कफ-मेद विलापन, अंगों के लिए स्थैर्यकर तथा त्वक्प्रसादक है । स्नेहकल्क के साथ अंगों के उदघर्षण को उद्वर्तनम् कहते हैं । (ब) उद्घर्षण एवं उद्वर्तन से त्वग्गत शिराओं के मुख का खुलना, त्वग्गत अग्नि अर्थात् भ्राजक पित की दीप्ति निश्चित रुप से होती है । उत्सादन से स्त्रियों का शरीर विशेष रुप से कान्तियुक्त हो जाता है । शरीर में प्रहर्ष, सौभाग्य, शुद्धि, लघुता आदि गुण प्राप्त होते हैं । उद्घर्षण कण्डू, कोठ तथा

वायु को नष्ट करता है । अस्निग्ध औषधि चूर्णादि के साथ अंगों को मलना ही उद्घर्षण का उत्पादन है । (स) फेनक–रीठे या आंवले आदि के पानी से या साबुन से अंगों को धोना शरीर परिमार्जनात्मक कर्म है । सुश्रुत के अनुसार फेनक जंघाओं में स्थैर्य तथा लाघवोत्पत्ति के साथ साथ कण्डू, कोठ, वायु, स्तम्भ तथ मल जन्य विकारों को नष्ट करता है । त्वग्गत अग्नि दीप्त होती है तथा शिरामुख खुल जाते है । (द) इष्टिका चूर्ण उद्घर्षण से कण्डू तथा कोठ समाप्त हो जाते हैं । अतः इन शरीर परिमार्जनात्मक उपायों का यथाविधि प्रयोग दिनचर्या का अंग मानकर करना चाहिए ।

स्नान :–

स्नान अति निद्रा दाह एवं श्रम का नाशक, स्वेद, कण्डू, तृष्णा शामक, श्रेष्ठ मलहर, सर्वेन्द्रियबोधक, तन्द्रा व पाप्मा को दूर करने वाला, तुष्टिदायक, पुंस्त्ववर्धन, रक्तप्रसादन तथा अग्निदीपक माना गया है । कहा भी है कि स्नान करने से शरीर, सत्य बोलने से मन, विद्या व तप से आत्मा तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध हो जाती है ।

आचार्यो ने शीत–उष्ण भेद से स्नान के गुणों का उल्लेख किया है । शीतल जल से स्नान करना रक्तपित प्रशान्तिकर है । शीतल जल से स्नान करते समय मनुष्य की अग्नि शरीर के भीतर प्रविष्ट हो जाती है, अतः अन्तरग्नि दीप्त हो जाती है । शीतल जल द्वारा शिरसः स्नान नेत्रों के लिए सदा हितकर है । शीतकाल में अत्यन्त शीतल जल स्नान कफ–वात प्रकोपक होता है । उष्ण जल को बिना सिर पर डाले स्नान बल्य तथा वातकफ नाशक है । उष्ण जल से शिरसः स्नान नेत्रों के लिए सर्वदा हानिकर है । परन्तु कफ–वात प्रकोप में रोग के बलाबल को समझ कर भैषज्यार्थ उष्णजल से शिरसः स्नान कराया जा सकता है । अत्यन्त उष्ण जल विशेषतः उष्णकाल में पित्त एवं रक्त की वृद्धि करता है ।

अनुलैपनादि :–

चन्दनादि का लेप सौभाग्यकर, वर्णकर, प्रीति एवं ओजवर्धक है । स्वेद, दौर्गन्ध्य, विवर्णता, श्रम को नष्ट करता है । जिन व्यक्तियों को स्नान निषिद्ध है उनको अनुलेपन भी निषिद्ध है । इसी प्रकार सुगन्धित इत्र तथा मालाधारण बलपुष्टिकर तथा अलक्ष्मीघ्न है । अधिक लबी, पुरानी तथा लाल रंग की फूलमाला निषिद्ध है । रत्न तथा अलंकार धारण भी शुभ है । फूल, वस्त्र और रत्नों का धारण करना रक्षोघ्न , ओजवर्धक, उत्तम, सौभाग्यकर तथा प्रीत बढाने वाला है ।

वस्त्रधारण :-

निर्मल वस्त्र धारण करना काम्य, यश , आयुवर्धक, अलक्ष्मीघ्न, हर्षकारक तथा बड़े लोगो के बीच बैठने की योग्यता प्रदान करता है । शयन, निर्गम तथा देवतार्चन के समय पहनने के लिए भिन्न भिन्न वस्त्र होने चाहिए। शीतकाल में कौषेय, गर्मी में काषाय, तथा वर्षा ऋतु मे श्वेत वस्त्र धारण करने चाहिए । कभी भी मलिन वस्त्र धारण नहीं करने चाहिए क्योंकि मलिन वस्त्र कण्डू , कृमि, ग्लानि तथा अलक्ष्मीकारक भावों में प्रधान है ।

वाग्भट ने भी जीर्ण, मलिन तथा रक्तोल्वण वर्ण वस्त्र को निषिद्ध बताते हुए कहा है कि दूसरे व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त वस्त्र, पुष्प तथा उपानह धारण नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार दूसरे द्वारा प्रयुक्त उपवीत, अलंकार, गले तथा हाथ की माला नहीं पहननी चाहिए ।

सन्ध्योपासन एवं योगाभ्यास :-

प्रतिदिन प्राणायाम, सुर्योपासना , गायत्रीजप, इष्टदेव अर्चना तथा ईश्वर स्तुती करनी चाहिए । प्रातःकाल की संध्या तथा अन्य संध्याओं को यथोचित समय से करते हुए सूर्य के सामने देर तक रुकना चाहिए । सद्वृत का पालन करना चाहिए । दीर्ध काल तक संध्या करने के कारण ही ऋषियों ने दीर्घयु, बुद्धि, यश, कीर्ति, बल, तेज तथा ब्रह्मवर्चस्व प्राप्त किया था । प्रच्छन्न पापकर्मी जप से, वेदवित् तप से, विद्वान क्षमा से तथा अकार्यकारी दान करने से शुद्ध होते हैं । अष्टांग योग विधि सहित तथा सुर्य नमस्कार को भी सन्ध्याउपासना का अभिन अंग माना गया है । उत्तम मनोदैहिक स्वास्थ्य के लिए नित्य सन्ध्योपासन एवं योगेभ्यास करना हितकर है ।

पादुका-पदत्र-छत्र-दण्डादिधारण :-

पादुका अर्थात काष्ठ निर्मित खड़ाऊं धारण करना शौच सूचक एवं हितकर माना गया है । विशैष रुप से भोजन के पूर्व तथा भोजन के पश्चात् पदुका धारण हितकर है । ऐसा करना रोगहर, वृष्य, चक्षुष्य आयु के लिए हितकर है । उसी प्रकार सर्वदा पादत्र अर्थात उपानह धारण करना पादरोगहर, वृष्य, रजोघ्न, प्रीतिवर्धक, चलने में सुखकर तथा ओजस्कर है । आधुनिक दृष्टी से नंगे पैरों चलने से नानाविध कृमियों का शरीर में संक्रमण हो जाता है । चरक संहिता में छत्रधारण को ईतिप्रशमन, बल्य, रक्षक, आवरक शुभ तथा वातातप धूलि तथा वर्षा से बचाव देने वाला कहा गया

है । इसी प्रकार दण्ड या दण्डिका धारण शरीर को सहारा देने और शत्रुओं से रक्षा करने में सहायक कहा गया है । इसलिए पादुका–पादत्र–छत्र–दण्डादि धारण को स्वस्थवृतक दिनचर्या का अंग स्वीकार करना उचित ही है ।

रात्रिचर्या :–

सन्ध्याकालोचित आचरण से लेकर रात्रिकाल में करणीय सर्व कर्म तथा रात्रि भोजन, शयन, निद्रा एवं स्वप्न, गर्भाधान, रजस्वलाचर्य तथा ब्रह्मचर्यादि पालन– ये सभी स्वस्थवृत संबंधी रात्रिचर्या के अंग हैं । यह संक्षिप्त में इस प्रकार है ।

संध्याकालीन चर्या :– अचार्यो ने सांयकाल भोजन, मैथुन, निद्रा, पठन तथा यात्रा इन पांचो को वर्ज्य कहा है । क्योंकि इस काल में भोजन करने से शारीरिक रोग, मैथुन से गर्भ विकृति, निद्रा लेने से दारिद्रय, पठन से आयु हानि तथा यात्रा से त्रास होता है ।

रात्रिकालीन भोजन :– रात्रि का भोजन रात्रि के प्रथम प्रहर में कर लेना चाहिए । रात्रि का भोजन मात्रा में कम तथा सुपाच्य होना चाहिए । क्योंकि सुर्य अग्नि के अभाव में जठराग्नि भी मन्द हो जाती है ।

शयन :– भोजन करने के पश्चात प्रसन्न मन से पवित्र तथा बिस्तृत स्थान में दो–तीन परिचारकों के साथ अच्छे सुखदायक, अविषम तथा जानुतुल्य उंचाई वाले शयनासन पर पूर्व या दक्षिण की ओर सिर करके शयन करना चाहिए । शयन के समय शरीर का दायां भाग उपर की तरफ हो , जिस से सूर्य नाडी चलती है तथा भोजन शीघ्र पचता है ।

ब्रह्मचर्य :–

ब्रह्मचर्य को रात्रिचर्या के संदर्भ में भी उल्लेख कर देना उचित ही है । स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, मैथुन क्रिया ये मैथुन के अंग माने गये हैं । इनके विपरीत आचरण करना ही ब्रह्मचर्य है जोकि आयु, आरोग्य और सुख देने वाला है । समस्त देह धारियों में सर्वदा मैथुन की इच्छा उत्पत्र होती है । इसलिए जिसको रात्रि के समय स्वपत्नी के साथ यथाविधी पूरा करना चाहिए । मैथुन न करने से प्रमेह, मेदोवृद्धि तथा शरीर में शैथिल्य उत्पत्र होता है । सुश्रुत ने पच्चीस वर्ष के पुरुष तथा सोलह वर्षीय स्त्री को समान रुप से प्राप्त वीर्य वाला माना है । अतः इस

वय में गर्भाधन करना चाहिए । वाग्भट ने इसी को बीस वर्ष तथा सोहल वर्ष माना है । इसके विपरीत गर्भधारण दोषपूर्ण होता है ।

निम्न अवस्थाओं में मैथुन नहीं करना चाहिए :-

1) रजस्वला 2) अकामा 3) मलिन 4) अप्रिय 5) वर्णवृद्धा 6) वयोवृद्धा 7) व्याधिपीड़ित 8) अंगहीन 9) गर्भिणी 10) योनिदोष 11)सगोत्रा 12) गुरुपत्नी 13)प्रव्रजिता तथा अन्य प्रकार से त्यज स्त्रियों से संध्याकाल तथा पर्व तिथियों में मैथुन नहीं करना चाहिए ।

इसी प्रकार गोधुलि बेला, अर्धरात्रि, दोपहर में लज्जायुक्त, खुले स्थान में मैथुन वर्जित बताया गया है। अशुद्ध, रोगी तथा अति दुर्बल व्यक्ति के लिए मैथुन वर्जित है ।

ऋतुचर्या :-

काल प्रविभागों का स्वास्थ्य तथा स्वस्थवृत्त से सीधा सम्बन्ध है । भारतीय संस्कृति में बारह महीनों को दो-दो मांस के एक एक ऋतु के क्रम से छः ऋतुऐं मानी है । 1) शिशिर 2) बसन्त 3) ग्रीष्म 4) वर्षा 5) शरद एवंम 6) हेमन्त है ।

शिशिर से लेकर ग्रीष्म तक - ये तीन ऋतुएं उत्तरायण तथा वर्षा से हेमन्त तक की तीन ऋतुएं दक्षिणायन काल में आती हैं । ऋतु परिवर्तन, आदान-विसर्ग एवं स्वास्थ्य :- आयुर्वेद में यह छः ऋतुएं दोषों के चय, प्रकोप, प्रशम के निमित्त कही गई है । ऋतुऐं के प्रभाव से उनके गुणानुसार दोषों से संचय, प्रकोप एवं प्रशम होता रहता है और तदनुसार ही मनुष्य के स्वास्थ्य को यथायोग्य औषाधि अन्न विहारादि पूर्वक ऋतुचर्या पालन करना चाहिए ।

वाग्भट के अनुसार वात का संचय, प्रकोप तथा प्रशम क्रमशः ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद् ऋतु में होता है, कफ का संचय प्रकोप प्रशम क्रमशः शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म में तथा पित्त का क्रमशः वर्षा, शरद्! और हेमन्त में होता है । सुश्रुत ने भी इस की पुष्टि की है ।

जल पीने के विषय में भी ऋतुचर्यक निर्देश किए गए है । सुश्रुत के अनुसार वर्षा ऋतु में यथा संभव जल नहीं पीना चाहिए । अधुनिक विद्वानों ने सभी ऋतुओं को ध्यान में रखते हुए दो से आठ सेर दृव्य पीने को कहा है।

प्राकृतिक चिकित्सा :-

प्राकृतिक चिकित्सा को सब से पुरातन चिकित्सा पद्यति कहा जा सकता है क्योंकि मनुष्य ने सब से पहले प्राकृति की गोद में ही अपना जीवन आरम्भ किया था । आज मनुष्य प्राकृति से दूर होता नजर आ रहा है । जिसके कारण वह कई प्रकार के रोगों से जकडा हुआ नजर आ रहा है । योग की तरह ही यह चिकित्सा चिकित्सा न होकर एक जीवन जीने की पद्यति थी । लेकिन ज्यों ही मनुष्य इस से दूर हो कर जीने लगा और विभिन्न प्रकार की समस्याओं से झुझने लगा, उसे प्रकृति के सहारे जीवन जीने के लिए प्रेरित होना पडा और प्राकृतिक पद्यति एक चिकित्सा नजर आने लगी । हम आज भी देखते हैं कि मनुष्य जहां पर अनेकों समस्याओं और रोगों से जूझ रहा है वहीं पर जानवर पशु पक्षी अपने जीवन को पहले जैसा ही सुखमय बीता रहे हैं । इस से स्पष्ट हो जाता है कि जो प्रकृति की गोद में रहते हैं वे सुखी और निरोग रहते हैं । मनुष्य ने अपने इर्द-गिर्द स्वं ने ही यह दीवारें खडी करी है और उनके लिये निदान भी खोजें हैं लेकिन सब के सब अस्थाई निदान है चाहे वह होम्योपैथिक, एलौपेथिक आदि हो लेकिन प्राकृतिक-चिकित्सा ही एक ऐसा निदान है जो कि स्थाई रुप से मनुष्य को रोगों और अन्य शारीरिक समस्याओं से मुक्त करवा सकता है । जानवरों, पशुओं, पक्षियों को नजला, जुकाम, बुखार, अधरंग, लकवा, दिल के रोग, रक्तचाप रोग आदि कभी भी नहीं होते क्योंकि वो अपनी मरियादाओं के अनुसार आचार-व्यवहार तथा खान-पान करते हैं । उन्होंने कभी भी प्राकृतिक के नियमों की उलघना नहीं की इस लिये वे सुखी और स्वस्थ है । दूसरी और मनुष्य ने प्राकृति के साथ छेड़ छाड़ करते हुए ही आज संकट में फस गया है । प्राकृति ने भी मनुष्य के साथ रोग तथा दुख दे कर मजाक किया है । प्राकृति कभी भी किसी को माफ नहीं करती ।

प्राकृतिक चिकित्सा का मुख्य सिद्धान्त है कि सभी रोग एक है तथा सभी रोगों का निदान एक है । शरीर के अन्दर की गन्दगी बाहर निकालने के लिए चार अव्यव है जो इस प्रकार है :- मूत्रमार्ग, मलद्वार, नासिका मार्ग तथा त्वचा । शरीर अपने अन्दर की गन्दगी इन मार्गो से बाहर निकालता है अगर गन्दगी सिर में जमा हो जाए तो वह सिर का रोग बन जाता है तथा अगर कमर में जमा हो जाये तो कमर का रोग और अगर दिल में गन्दगी जमा हो जाये तो दिल का रोग कहलायेगा तथा पेट में गन्दगी जमा होने से पेट रोग बन जाता है । इस लिये रोग को रोग के नाम से नहीं गन्दगी से जाना जाता है । शरीर की गन्दगी बाहर निकालने के लिए इन चारों अव्ययवों का ठीक प्रकार से कार्य करना अति आवश्यक है । मनुष्य को रोग लगने का मुख्य कारन उस का गलत

प्रकार का आहार लेना ही है । रोग कोई भूत-प्रेत नहीं है जो कि चलते फिरते मनुष्य के लिपेट जाता है । आजकल का मनुष्य वह वस्तुएं खाता है जो उसको अच्छी लगती है जबकि मनुष्य को वह वस्तुएं खानी चाहिये जो कि शरीर के लिए जरुरी है अथवा लाभदायक है।

छोटे-छोटे अचानक हुए (आकसमिक) रोग कोई रोग नहीं होते बल्कि शरीर अपने को सतुलित करने के लिए ऐसे रोग पैदा करता है और मनुष्य किसी अन्य चिकित्सा पद्यति से उसे उपचार करने लग जाता है और गन्दगी(रोग) को अन्दर ही जमा कर लेता है । इस प्रकार बार बार करने से शरीर के अन्दर पर्याप्त मात्रा में गन्दगी जमा हो जाती है तथा किसी बड़े रोग का जन्म होता है । अगर किसी एक अव्यव के रोग हो जाते हैं जैसे कि स्वास से सम्बन्धित रोग होने पर अगर अन्य प्रकार की चिकित्सा की जार्ती है तो वह रोग उस अव्यव से हट कर अन्य अव्यव के प्रति गती कर जाता है । प्राकृतिक चिकित्सा में सब से पहले रोगी के आहार को नियंत्रित किया जाता है । फिर उतसर्जित अंगो को सक्रिय किया जाता है ताकि गन्दगी बाहर निकल जाए तथा शरीर रोग मुक्त हो जाये । आहार नियंत्रित करने पर कोशिश यह की जाती है कि मनुष्य को जो कुछ भी आहार रुप में दिया जाये कच्चा ही दिया जाये, सीधा प्राकृतिक रुप में ही दिया जाये । अगर रोगी कच्चा खाने के योग्य नहीं है तो अंकुरित कर के खिलाया जा सकता है । अगर रोगी अंकुरित खाने के योग्य भी नहीं है तो उसे उबला हुआ खाने को दिया जा सकता है । कोशिश यह की जाती है कि ज्यादा खट्टा, तला हुआ, ज्यादा भुना हुआ रोगी को न दिया जाये। क्योंकि यह अप्राकृितक हैं । क्योकि मनुष्य पांच तत्वों से बना हुआ है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश । इनके सम न रहने पर शरीर में रोग उत्पन हो जाते हैं तथा प्राकृतिक चिकित्सा में इन को भी सम अवस्था में करने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं ।

प्राकृतिक चिकित्सा में मीट्टी, पानी और सूर्य की मुख्य भूमिका रहती है ।

विभिन्न प्रकार की मीट्टी विभिन्न प्रकार के रोगों के लिए प्रयोग में लाई जाती है जैसे कि काली मीट्टी, बालू मुलतानी मीट्टी, लाल मीट्टी आदि । मीट्टी को प्रयोग में लाने के लिये इस का लेप पूरे शरीर पर किया जाता है वहीं पर मीट्टी की पट्टी का भी सहारा लिया जाता है । लेप करने तथा फिर स्नान करने की भी विधि प्रचलित है ।

प्राकृतिक चिकित्सा के मुख्य अंग पानी से ही कई प्रकार के रोगों का निवारण करने के लिये प्रयोग किया जाता है । पानी के उपर तो अलग से एक जल चिकित्सा का भी अविष्कार किया गया

है जिससे इस की महत्ता का पता चलता है ।

पानी के द्वारा चिकित्सा में कई प्रकार के स्नान भी बताये गये हैं जैसे कि कमर स्नान, पूर्ण सनान, नितम्ब स्नान तथा वाश्प स्नान आदि मुख्य है । पानी को जहां स्नान के लिए प्रयोग में लाया जाता है वहीं पानी को पीने का भी विधान है । इन सभी प्रकार के कार्यों के लिए विशेषज्ञ की आवश्यकता पड़ती है ।

शरीर में कई रोग ऐसे होते हैं जिनको बाहर करने के लिये उष्णता का भी सहारा लिया जाता है । जिस में सूर्य की मुख्य भूमिका है । सूर्य स्नान कई रोगो को हर लेता है । सूर्य स्नान के अन्त्रगत ही रोगो द्वारा चिकित्सा भी आ जाती है । पानी का कई रोगों के लिए गर्म करके सिकाव भी किया जाता है जिससे रोगों को दूर किया जाता है । जिस प्रकार गर्म पानी का स्नान भी इसी का ही एक अंग है ।

वायु के द्वारा भी कई प्रकार के रोगों को दूर करने में मदद मिलती है । रोगी को खुले तथा साफ वातावरण में घुमाया तथा व्ययाम करवाया जाता है ।

क्योंकि आजकल वायु प्रदूशण बहुत अधिक हो रहा है । मनुष्य को हर समय साफ वायु की जरुरत पड़ती है । इस लिये रोगी को स्वस्थ करने के लिए सुबह तथा सांय काल की शैर करने के लिये प्रेरित किया जाता है ।

उपवास भी प्राकृतिक चिकित्सा का एक अंग है । जिस से कई प्रकार के रोग स्वतः ही ठीक हो जाते हैं। उपवास रखना आसान है लेकिन इस को तोडना कठिन है इस लिये किसी विशेषज्ञ की अधीनता में ही एसा करना चाहिये । उपवास अकाश तत्व की कमी को दूर करता है ।

<u>त्योहार :-</u>

भारत देश त्योहारों का देश है । यहां पर तेंतीस करोड़ देवताओं के होने की मान्यता है । यहां पर प्रत्येक दिन कोई न कोई त्योहार, शहीदी दिवस अथवा जन्म दिवस होता है । जिस का अपना अलग महत्व है । त्योहारो से भी हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है । भारतीय संस्कृति के मुख्य त्योहार इस प्रकार है :- दशहरा, दीवाली, रक्षा बन्धन, होली, लोहडी, मकर सक्रांति, बसन्त पंचमी आदि । मुख्य दिवस इस प्रकार है – गांधी जयंती, श्री श्रृदानन्द जयंती, स्वामी दयानन्द जन्म दिवस, स्वामी विवेका नन्द जयंती ।

इन त्योहारो के कारन हमारे संस्कारों को पवित्र करने का अवसर मिलता है जो कि आगे आने वाली पीड़ीयों के लिए भी लाभदायक है क्योंकि संस्कार वंशानुगत चलते हैं । दशहरे को बुराई पर अच्छाई के प्रतीक के रुप में मनाया जाता है । इसी प्रकार दीवाली को भी भगवान राम के अयोध्या वापिस पहुचंने के उपलक्ष में मनाई जाती है । इसी दिन लोग अपने घरों को सजाते तथा सवांरते हैं जिस से बहुत सी गन्दगी हट जाती है तथा रोगों को आने से रोका जा सकता है । रक्षा बन्धन एक एसा त्योहार है जिसमें बहन भाई का आपसी प्यार झलकता है । भाई–बहन को पवित्र संस्कारों से जोड़ने वाला यह त्योहार किसी और संस्कृति में नहीं है, तो वहां की दुर्दशा किसी से भी छिपी नहीं है । इसी प्रकार होली का त्योहार भी आपसी भेदभाव को मिटाने वाला तथा मैत्री भाव बढाने वाला है । सभी को रंग बिरंगे देख कर व्यक्ति का मन भी खुशी से भर उठता है । इस लिए आपसी भेदभाव मिटाने वाला यह त्योहार भारतीय संस्कृति की देन है ।

पहनावा :–

भारतीय संस्कृति में ज्ञान–विज्ञान अपनी चरम सीमा पर था इस ने किसी भी क्षेत्र को अपने प्रभाव से नहीं बचने दिया । भारतीय संस्कृति में तो इतनी ज्यादा शौध तथा अनुसधान पहले से ही ऋषियों मुनियों ने कर रखे हैं कि इन पर केवल चलने की ही जरुरत है । पहनावा किसी भी व्यक्ति के जीवन का एक अंग तो होता ही है साथ–साथ व्यक्ति तत्व पर भी प्रभाव डालता है । पहनावा किसी व्यक्ति की जिन्दगी में रोगों से बचने के लिए भी कार्य करता है । भारतीय संस्कृति के अनुसार अगर हम देखें तो धौति कुर्ता, पजामा कुर्ता तथा स्त्रियों में साड़ी का प्रचलन था । जिसको पहनना हमारे स्वास्थ के लिए लाभ दायक तथा किसी प्रकार का कोई प्रतिकूल प्रभाव न डालने वाला है । भारतीय परीधान ऐसे है जो कि जरुरत पड़ने पर बहु आयामी हैं । जैसे कि औढना, बिछाना, बाधना आदि ।

पश्चिम देशों में पेंट–शर्ट, टाई, पेटी को प्रमुखता दी जाती रही है । लेकिन अब उन लोगों ने शौध करके यह बताया है कि टाई बाधने से हमारे आखों की ग्रन्थीयां कमजोर पड़ जाती है तथा पेटी जो कि दूसरे पशुओं के चर्म से प्राप्त होती है, के कारन पशुरोगों का मनुष्य पर भी दुष्प्रभाव डालता है । पाश्चात्य देशों में अब रंग चिकित्सा का भी विकास हो रहा है जो कि भारतीय संस्कृति की ही देन है क्योंकि हम तो पहले से ही सूर्य को देवता मानते आ रहें हैं । इस

प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय परीधान की कोई काट नहीं है तथा यही परीधान सर्वश्रेष्ट है। हमे निसकोंच पुनः इसे अपना लेना चाहिये ताकि हम सुखी व स्वस्थ जीवन जी सके ।

खानपान :-

आजकल जो कुछ खानपान में परोसा जा रहा है या हम जो कुछ ख रहे हैं वो भारतीय संस्कृति के अनुसार तो क्या, उसके नजदीक भी नहीं है । तला हुआ, भूना हुआ, डिब्बा बन्द हुआ और आयातित, मांस खाना, खड़े खड़े खाना, बाते करते हुए खाना, अधिक खाना, चटपटा खाना, गर्म-गर्म खाना बगैर मौसम के खाना इत्यादि का आजकल प्रचलन है जबकि भारतीय संस्कृति में इन सब बातों का निषेद है ।

भारतीय संस्कृति के अनुसार शाकाहारी, सात्विक भोजन करने के लिए कहा गया है । दूध, मक्खन, दही, दलीया, चावल, खीर, हल्वा, कड़ी, दाल, कम मीठा, कम नमक वाला भोजन ही करने के लिए कहा गया है तथा बैठ कर के एकांत में अच्छी प्रकार से चबाने तथा शांत मन से भौजन करने के लिए कहा है । खड़े-खड़े खाने की जहां पर हानी है वहां बैठ कर खाने में लाभ है ।

आधे रोग तो हम भारतीय संस्कृति के नियमों अनुसार न खा कर लगा लेते हैं तथा कुछ रोग बाद में स्वतः ही लग जाते हैं ।

दिनचर्या की वस्तुओं का प्रयोग :-

मनुष्य अपने जीवन को हर सुबह शुरु करता है और रात्रि तक समाप्ति करता है जिस के दौरान वह बहुत वस्तुओं का उपभोग करता है जिन का प्रभाव उसके जीवन पर पड़ता है । भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य की प्रातः उठते ही पानी पीना चाहिये ना कि चाय । क्योंकि पानी शरीर की गन्दगी को बाहर निकालने में सहायता करता है और चाय ऐसा न कर के केवल रक्त चक्र को ही तेज करती है ।

इसी प्रकार कुछ खाने से पूर्व हमें दातुन करना चाहिये । जिस के लिए मन्जन और वृक्षों से प्राप्त दातुन का प्रयोग करना चाहिये जिस से दांत साफ होने के साथ-साथ मजबूत भी बनते हैं क्योंकि मसुड़ो की भी कसरत हो जाती है। जबकि इसके दूसरी तरफ हम ब्रश का तथा पेस्ट का प्रयोग करते हैं जो कि मसुड़ो की बिमारी का मुख्य कारन बनता है । शौच के लिए भी भारतीय सस्कृति के अनुसार हमें पांच 'प' (पानी, पवन, प्रकाश, पृथ्वी, पवित्रता) आदि का

विशेष तोर पर ध्यान रखना चाहिये जबकि आजकल पूरा विश्व पश्चिम राष्ट्रों की नकल करने में लगा हुआ है तो कैसे सुखी और स्वस्थ जीवन जी सकोगे ।

इसी प्रकार नहाने के लिए भी प्राकृतिक पानी का प्रयोग करना चाहिये और नहाने के बाद सूर्य को पानी देना चाहिए, जिस पर आजकल वैज्ञानिकों ने अपने अनुसार कई प्रकार के लाभ बतायें है । दिन भर मेहनत करने के पश्चात मनुश्य को शाम को जल्दी सोना चाहिये और सुबह ब्रह्म महुर्त में उठना चाहिये । जबकि आज कल लोगों की दिन चर्या ऐसी है कि रात्रि को देर तक सोना और सुबह देर से उठना जोकि भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं है और ऐसा करना रोगों को देने वाला तथा दुःख प्रदान करने वाला है । सूर्य उदय से पहले उठे और आओ भारतीय संस्कृति को अपना कर सुखी और स्वस्य जीवन जीयें ।

भारतीय संस्कृति के अनुसार चार आश्रमों का वर्णन :-

कोई भी मनुष्य स्वस्थ जीवन तभी जी सकता है जब वह अपनी आयु के अनुरुप आचरण करता है । अच्छा आचरण करने के लिए भी मनुष्य को किसी मार्गदर्शन अथवा आदर्श व्यक्ति को अनुसरण करना पड़ता है । कोई भी मनुष्य अमर नहीं होता उसे एक दिन मरना ही होता है । लेकिन शास्त्र हमेशा रहतें हैं ।

शस्त्रों के अनुसार कलयुग में मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी गई है और सौ वर्षो को चार भागो में बांटा गया है और उन के कर्म, आचरण, नियम आदि का भी स्पष्ट रुप से वर्णन किया गया है । यह चार आश्रमों के जिन नामों से जाने जाते हैं वह निम्न लिखित हैं :-

1. ब्रह्मचर्य आश्रम
2. गृहस्थ आश्रम
3. वान प्रस्थ आश्रम
4. सन्यास आश्रम

ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए मनुष्य को विद्याध्यन और व्यवसाय का चयन करने के लिए प्रेरित किया गया है । इस आश्रम के पूरा होने पर ही मनुष्य को शादी करने के लिए परिपक्व माना जाता है । इसी प्रकार आजकल के विज्ञानिकों ने भी अध्ययनों से इस बात की पूष्टि कर दी है । अगर मनुष्य इस नियम के अनुसार नहीं चलता तो उसे कई प्रकार की बिमारीयों,

परेशानीयों आदि से समाना करना पड़ता है । जिसने समय से पहले ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश किया उस के बच्चे कमजोर होने के साथ–साथ स्वयं भी दूर्बलता को शिकार हुऐ है । विद्या प्राप्ति से वंचित होने के कारन भी उसे विभिन्न प्रकार की परेशानियां अपने आगोश में ले लेती है ।

इसी प्रकार ग्रहस्थाश्रम में भी मनुष्य अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करता हुआ अपने बच्चों का पालन पोषण करता है । ज्यों–ज्यों मनुष्य बुढापे की और अग्रसर होता है त्यों–त्यों शारीरिक के साथ–साथ मानसिक चिन्तायें भी मनुष्य को जकड़ लेती है जब कि भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य को इस आयु में अर्थात पचास वर्ष के बाद मानसिक परेशानियों से मुक्त रखते हुए उसे सन्यास आश्रम प्रदान किया है और केवल एक दृष्टा भाव से जीने के लिए प्रेरित किया गया है । इन सभी आश्रमों से गुजरता हुआ मनुष्य जहां पर भोग करता तथा स्वस्थ जीवन यापन करता है वहीं मोक्ष का अधिकारी भी बनता है ।

<u>गंगा, गाय, गायत्री का जीवन में महत्व</u> :–

भारतीय संस्कृति में गंगा को मां के नाम से पुकारा जाता रहा है । जिस प्रकार मां अपने सन्तान के प्रति ममता भाव रखती है उसी प्रकार गंगा नदी में भी एसी उर्जा है मानव जाति के लिए ममता भाव रखती है । गंगा की शरण में जाने मात्र से ही मनुष्य का उद्दार हो जाता है । गंगा के पानी में जहां स्वास्थय के लिए पानी पीने के लिए उपल्बद है वहीं इस का पानी फसलों को भी विशेष लाभ प्रदान करता है ।

विश्व में जहां पानी को उप्करणों के द्वारा शुद्ध किया जाता है फिर भी वो पानी गंगा के पानी का मुकाबला नहीं कर सकता इस का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि बोतल बन्द पानी एक अवद्यि लिखी होती है जिस के बाद वो पानी पीने योग्यय नहीं रहता जबकि गंगा के पानी में जीवाणु/कि्टाणुओं एक बहुत लम्बे समय तक नहीं पड़ते और पीने के योग्य रहता है । इस प्रकार जहां पर जीवन जीने के लिये स्वच्छ पानी की अवश्यकता है वहां पर गंगा के पानी को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता ।

चाहे आज वैज्ञानिकों ने इस बात की पूष्टि कर दी है कि गंगा के पानी में ढलान बहुत ज्यादा होने के कारन चुम्बकीय शक्ति आ जाती है । एक और निष्कर्ष के अनुसार इस पानी की

स्वच्छता इस लिये है क्योंकि यह पानी विशेष प्रकार की जड़ी बूटियों से हो कर आता है जो कि पीने और नहाने के लिए विशेष लाभकारी है । जो व्यक्ति गंगा के पाने से सनान करता है उस को चमड़ी के रोग छु तक नहीं सकतें । विज्ञानिकों ने आज इस बात की पूष्टि की है जबकि भारतीय संस्कृति में गंगा नदी की महानता बहुत पहले से है ।

गाय :-

भारतीय संस्कृति में गाय को सभी पशुओं से उत्तम माना गया है । इसी लिए इस को मां का स्थान दिया गया है । गाय समुन्द्र मन्थन के समय निकले गए चौहदह रत्नों में से एक मानी गई है । गाय को हिन्दु संस्कृति / भारतीय संस्कृति का प्रतीक भी माना जाता है । गाय एक कल्याणकारी पशु है ।

आज विज्ञानिक युग है । विज्ञानिकों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि गाय का दूध, मूत्र, गोबर, मक्खन, घी, मट्ठा आदि अति लाभकारी है । जबकि भारतीय संस्कृति में तो बहुत पहले से की गाय का दूध और मूत्र विशेष उपलक्षों पर प्रयोग किया जाता है । आज विज्ञानिकों ने इस बात की पूष्टि कर दी है कि भैंस, बकरी आदि के दूध से हि्दय चमड़ी रोग हो सकतें है लेकिन गाय के दूध से नहीं । भारतीय और पाश्चात्य के विज्ञानिकों ने कैंसर जैसे भयानक रोग के लिए गो मूत्र की सिफारिश की है जबकि हमारे ग्रन्थों में गोमुत्र को पहले ही महत्व दिया गया है । पिछले दिनों '' जी न्यूज'' चैनल के अनुसार लखनऊ शहर में देशी गाय का मूत्र चार रुपये लीटर तक बिक गया था । विश्व को गाय की महत्ता का आज पता चला है जबकि भारतीय संस्कृति में गाय को सर्वपरि मानते आये हैं औइ इस प्रकार इस का स्वस्थ जीवन जीने में बहुत हाथ है ।

मातृत्व :-

भरतीय संस्कृति में मां को देव तुल्य कहा गया है और माता के प्रति ऊऋण नहीं हुआ जा सकता । मां अपने बच्चे को किस प्रकार पालती और बड़ा करती है किसी से भी छिपा नहीं है । विदेशों मे तो किराये की कोख का प्रचलन तथा पति बदलते रहने की प्रम्परा है जो कि उनके बच्चों के लिए अभिशाप है । जबकि हमारे यहां शादी को जन्मों-जन्मों का बन्धन माना जाता

है । मातृत्व के अभाव में बच्चे का विकास भी नहीं हो पाता । बच्चे में संस्कारों का विकास भी नहीं होगा । मातृत्व के कारण ही हमारे यहां बच्चो को बचपन में भरपूर प्यार मिलता है जबकि अन्य संस्कृति में ऐसी प्रम्परा नहीं है ।

गायत्री :-

गायत्री मन्त्र को महामन्त्र माना गया है । गायत्री मन्त्र के जप, स्मरण, उचारण मात्र से ही मनुष्य का कल्याण हो जाता है । यह मनुष्य के भौतिक, दैविक, आदिदैविक तीनों प्रकार के दुखों को हरण करने में समर्थ है । यह पद्यति भी भारतीय संस्कृति की ही देन है ।

धार्मिक अनुष्ठान :-

जहां तक आज कल की विज्ञानिक दृष्टि से भी नहीं पहुंचा जा सकता वहां तक हमारे पूर्व के ऋषियों ने चिन्तन करके उन विषयों तथा मुश्किलों को हल करने की पद्यतियों को खोजा जिस के कारन ही हमारे भारतीय समाज ने सुखी एवं स्वथ्य जीवन जीया । जहां पर भारतीय जीवन में सोलह संस्कारों को अनिवार्य माना है वहीं पर किसी प्रकार की विशेष मुश्किल आने पर अथवा विशेष प्रकार की मनोकामना पूर्ण करने के लिए भी अलग-अलग प्रकार के अनुष्ठानों का वर्णन मिलता है ।

पूरे विश्व में एसी कोई औषधि अथवा विधि नहीं है जिस से किसी मनुष्य की अकाल मौत को टाला जा सकता हो लेकिन भारतीय संस्कृति में ऐसे भी उदाहरण मिलते है कि ''महामृत्युज्य'' के जाप से अकाल मृत्यु को टाला गया हो । मारकण्डे ऋषि के जीवन से इस सत्य की पुष्टि हो जाती है । ''आज जहां भौतिकवाद अपनी जड़े मजबूत कर रहा है वहां अनेकों दुख एवं रोग इसी भौतिक सुख पाने के कारन आ खड़े हुये हैं । जहां पर पहले घुड सवारी, ऊंट सवारी आदि यातायात के मुख्य साधन थे किसी प्रकार की कोई दुर्घटना नहीं घटती थी लेकिन आज कारें, स्कूटर, रेलगाडी, वायुयान, जलयानों के कारण अनेकों दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ रहा है ।''

यज्ञ :-

भारतीय संस्कृति में यज्ञ को जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है । यह वैसे तो नित्य कर्म माना गया है । लेकिन फिर भी इस का महत्व नाम करण, शिखा संस्कार, विवाह

संस्कार, ग्रह प्रवेश तथा किसी कार्य के शुभारम्भ पर भी हवन का आयोजन विशेष रुप से किया जाता है । हवन की अग्नि को देवताओं को मुख माना जाता है । हवन के माध्यम से ही व्यक्ति अपने पूर्व जन्मों में किये गये पाप कर्मो को भी भुगतान करने में समर्थ हो जाता है ।

आज वैज्ञानिक भी इस बात को मानने लगे हैं कि केवल हवन की अग्नि में ही वातावरण की गन्दगी को दूर करने की शक्ति है । जिस से अनेकों प्रकार के विषेले तत्व नष्ट हो जातें है और मनुष्य स्वस्थ एवं सुखी जीवन जी सकता है । हवन के माध्यम से ही समग्री से सुगन्धित हुई वायु हमारे मस्तिष्क में पहुंच कर नाडियों को लाभ देती है । जिस व्यक्ति को शुद्ध देशी घी डाकटर के द्वारा मना कर दिया जाता है लेकिन हवन में दी गई घी की आहुति से वायु द्वारा हमारे शरीर में इस के तत्व पहुंच कर लाभ पहुचाते हैं । नित्य हवन करने से आखों की रोशनी भी बढ़ती है । हवन में क्योंकि सात्विक लकड़ी तथा समग्री का प्रयोग होता है इस लिए वो हमारे मानसिक दशा के लिए भी बहुत लाभकारी है ।

यज द्वारा इतना कुछ लाभ हमारे जीवन में होने पर भी बस नहीं यह मोक्ष का भी एक मार्ग माना गया है । पूर्व के अनेकों लोगों ने यज के माध्यम से पुत्र प्राप्ति, मनोकामना, विजय तथा वरदान पाये हैं । यह यज(हवन) भी भारतीय संस्कृति की ही देन है जिस का आज तक कोई विकल्प नहीं खोजा जा सका ।

पूजा--पाठ :–

भारतीय संस्कृति में मनोकामना पूर्ण करने तथा देवताओं का आभार व्यक्त करने के लिए पूजा पाठ का बड़ा महत्व है । जिस के माध्यम से मनुष्य अपना जीवन स्वस्थ एवं सुखी बना सकता है । रोगों को भी निवार्ण कर सकता है । लोग अपने इष्ट देवता का ध्यान नित्य करते हैं और इस में गणेश पुजा, शिव पुजा, लक्ष्मी पुजा, सरश्वती पुजा, गंगा पुजा आदि विशेष रुप से प्रचलित है ।

पुजा–पाठ कर्मकाण्ड के अन्त्रगत आता है । इस को विधिवत तरीके से शुरु तथा विधि िवत तरीके से ही समाप्त किया जाता है । इस के द्वारा पुत्र प्राप्ति, इच्छित फल, धन प्राप्ति, शुभारम्भ आदि लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं। यह पधति भारतीय संस्कृति की ही देन है । एसी पघति अन्य संस्कृति में कहां ?

सन्ध्या उपासना :-

भारतीय संस्कृति में सन्ध्या उपासना को भी जीवन चर्या का एक हिस्सा माना गया है । सन्ध्या उपासना में जहां मन्त्र जप किया जाता है वहां साथ साथ ध्यान की प्रक्रिया भी हो जाती है इस प्रकार यह दोनों कार्य एक साथ करने से व्यक्ति को मानसिक रोगों से छुटकारा मिलता है तथा आत्मिक शांति भी मिलती है । सन्ध्या उपासना मे ईश्वर स्तुति भी की जाती है जिस में हमारे सुखी जीवन के लिए धन्यवाद भी दिया जाता है जिस ने हमें एक मनुष्य जीवन के साथ–साथ कितने ही भोग पदार्थ प्रदान किये है ।

''सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया सर्वे भद्राणि पश्यन्तु , मा कश्चिद दुख भाग भवेत '' एसी सोच भी भारतीय संस्कृति की ही देन है । इस प्रकार 'परहित सर्स धर्म नांही भाई '' जैसा धर्म भी भारतीय संस्कृति की विशालता को दर्शाता है ।

वास्तु शास्त्र :-

मनुष्य के रहने का स्थान कैसा हो , जिन नियमों का भवन निमार्ण के लिए ध्यान रखा जाना चाहिए उन सभी बातों का वर्णन प्राचीन विद्वानों ने वास्तु शास्त्र नामक ग्रन्थ में बड़ी बारीकी से किया है । वास्तु शास्त्र में पूरे भवन को एक उल्टे पडे हुए मनुष्य जिस का सिर उत्तर पूर्व में हो, की आकृति के समान माना है । वास्तु विद्वानों का मानना है कि जिस प्रकार शरीर के सभी अंग अपने एक विशेष स्थान पर है, ठीक उसी प्रकार भवन के अंग भी एक विशेष क्रम में होनें चाहिए । जिसमें अतिथी ग्रह, भंडार ग्रह, रसोई ग्रह, पानी भंडार, पूजा स्थल, शौचालय, स्नानागार आदि अपने ठीक स्थान पर होने चाहिए । आज के वैज्ञानिक युग में बहुत तरकी हुई है लेकिन फिर भी आधुनिक भवन निर्माण कर्ता वास्तु शास्त्र की उस चरम सीमा तक नहीं पहुंच पाएं हैं ।

मनुष्य अपने जीवन में अगर योग, प्राकृतिक चिकित्सा तथा आयुर्वेद आदि सभी नियमों का ध्यान रखते हुए तथा कर्मो में भी शुभ, निष्काम कर्म करता है तो भी वास्तु के अनुरुप न रहने से भिन्न–भिन्न प्रकार की व्याधियो से ग्रहत रहता है । वास्तु शास्त्र में तो यहां तक दिया हुआ है कि अगर भवन निर्माण में एक विशेष प्रकार की तरुटि होने पर एक विशेष प्रकार का रोग अथवा नुक्सान होगा । वास्तु शस्त्र भी भारतीय संस्कृति की ही देन है जिस के अनुसार हम अपने भवनों का निर्माण करके सुखी व निरोग जीवन जी सकते हैं ।

निषकर्ष :–

किसी शायर ने ठीक ही कहा है :– रोम, युनान, मिस्र सब मिट गए जहां से, कुछ खास है कि मिटती नहीं हस्ती हमारी । भारत लगभग एक हजार वर्ष तक विदेशी शक्तियों के आधिपत्य में रहा है इस अवधि में भारतीय संस्कृति पर हर क्षेत्र में चाहे वो शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे वो आर्थिक क्षेत्र, हो गहरा अधात हुआ है । अंग्रेजो ने जहां हमारी संस्कृति का मजाक उड़ाया था वहीं आज वो पाश्चात्य राष्ट्र हमारी उस संस्कृति को आज की विज्ञानिक कसोटी पर खरा उतरी देख कर आश्चर्यचकित है । यधपि सुखी एवं स्वस्थ जीवन एक अयामी बात है । लेकिन फिर भी इस का हमारे जीवन में काफी महत्तव है । क्योंकि जीवन के अन्य अयाम स्वस्थ जीवन पर जी निर्भर करते है। इसलिए पहला सुख निरोगी जीवन माना है । अगर मनुष्य अपने जीवन में निरोगी रहता है तो वह जिन्दगी के सभी क्षेत्रों में प्रगति कर सकता है । चाहे वो क्षेत्र पठन--पाठन, आर्थिक, समाजिक, राजनैतिक और व्यवसायिक हों । स्वास्थय को जीवन रुपी शरीर की मेरु दंड कहा जा सकता है । बिना स्वास्थय के मनुष्य सभी कुछ होते हुए भी कुछ नहीं होता । उपरोक्त विवरण से यह सपष्ट हो जाता है कि जिस संस्कृति में जीवन से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों पर पूरा शौध हुआ हो, सुखी व निरोग जिन्दगी की कामना की जा सकती है । हमारी भारतीय संस्कृति इस पर खरा उतरती है । मनुष्य को निसंकोच इस संस्कृति को अपना लेना चाहिए ।

.................000.....................